जैन भक्ति साहित्य

☐ प्रो० महेन्द्र रायजादा
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
श्रीकल्याण राजकीय महाविद्यालय, सीकर

भारतवर्ष में वैदिक, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध, जैन, सिक्ख तथा लिंगायत आदि धर्म के अनेक पन्थ प्रचलित एवं प्रसिद्ध हैं। ये विभिन्न धर्मपन्थ हमारे देश की संस्कृति की अध्यात्मपरक चिन्तनधाराएँ हैं। इन धर्मधाराओं के प्रवर्त्तकों, साधुओं, प्रचारकों एवं कवियों ने अपने दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में मानव-जीवन को विशुद्ध, समृद्ध एवं कृतार्थ बनाने हेतु नवीन-नवीन क्षेत्र खोजे हैं एवं जीवन का विपुल अध्ययन एवं साक्षात्कार किया है। धर्म प्रचारकों एवं कवियों ने समय-समय पर अपने पन्थ की मूल प्रवृत्तियों एवं सिद्धान्तों का रहस्योद्घाटन तथा विवेचन करते समय अपने मौलिक विचारों एवं निजी अनुभवों का भी उसमें थोड़ा बहुत समावेश किया है। मूल आर्य एक सरिता की भांति अपने उद्गम से प्रवाहित होता हुआ अपने सुदीर्घ प्रवाह में मार्ग में पड़ने वाले स्थलों के जल को भी ग्रहण एवं आत्मसात करता हुआ निरन्तर प्रवहमान रहता है। वैदिक धर्म आगे बढ़कर सनातन धर्म हुआ और आज हिन्दू-धर्म के नाम से अभिहित किया जाता है। एक ही धर्म की धारा से अनेक पन्थों की धाराएँ तथा शाखा-प्रशाखाएँ फूटी हैं। हमारे देश के सभी धर्मों में आदान-प्रदान भी होता रहा है और इसी कारण हमारा सांस्कृतिक जीवन अत्यन्त सहिष्णु एवं समृद्ध रहा है।

लगभग सभी धर्मों में भक्ति को अधिक महत्त्व दिया गया है। एक भी धर्म ऐसा नहीं है जिसमें भक्ति को प्रधानता नहीं दी गई हो। ज्ञानमार्गी एवं अद्वैतवादी जगद्गुरु शंकराचार्य जो कि 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' में विश्वास रखते थे उन्हें भी यह कहना पड़ा 'मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी'। इसी प्रकार ज्ञानमार्ग में अटूट विश्वास रखने वाले जैनियों को भी भक्ति की महिमा को स्वीकार करना पड़ा। वास्तव में भक्ति ही निरन्तर प्रवाहित रहने वाली रसमयी प्रवृत्ति है। जैन जीवन दृष्टि ने जिनेन्द्र आदि चाहें कोई भी नाम स्वीकारा हो; किन्तु उन्होंने अपनी निष्ठा आत्मतत्त्व को समर्पित की है; क्योंकि आत्मा का अर्पण तो आत्मदेव को ही हो सकता है और इसी आत्मदेव की भक्ति को सभी ने अपने ढंग से उपासना करने के लिए अपनाया है। धर्म के विविध पन्थों की जीवन पद्धतियों में कितना भी अन्तर रहा हो, किन्तु सभी धर्मों के अनुयायियों, भक्तों एनं कवियों ने अपनी आत्मा एवं हृदय की वाणी को पूर्ण निष्ठा एवं श्रद्धा के साथ अपने आराध्य-देव को अर्पित किया है।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार हिन्दी भक्तिकाल के आरम्भ में उस समय प्रचलित बारह सम्प्रदाय नाथ सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त थे। उनमें 'पारस' और 'नेमी' नामक दो सम्प्रदाय भी ये। जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के नाम पर नेमीसम्प्रदाय तथा तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के नाम पर 'पारस-सम्प्रदाय' प्रचलित हुआ। नेमी-सम्प्रदाय दक्षिण में तथा पारस-सम्प्रदाय उत्तरी भारत में अधिक फैला था। हिन्दी के सन्त कवि कबीरदास पर भी इस सम्प्रदाय का थोड़ा-बहुत प्रभाव अवश्य पड़ा था। कबीर की 'निर्गुण' में 'गुण' और 'गुण' में 'निर्गुण' वाली बात (निरगुन में गुन और गुन में निरगुन) कि गुण निर्गुण का तथा निर्गुण गुण का विरोधी नहीं है तथा संसार के घट-घट में निर्गुण का वास है। निर्गुण का अर्थ है गुणातीत और गुण का अर्थ है प्रकृति का विकार सत्, रज और तम। कबीर के इसी निर्गुण को सातवीं शताब्दी में अपभ्रंश भाषा के जैन कवियों ने निष्कल कहा है। जैन मुनि रामसिंह ने 'दोहापाहुड' में लिखा है— 'तिहुयणिदीसइ देउजिण जिणवरि तिहुवणु एउ।' वे ब्रह्म को संसार में बसा बताते हैं तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वैत की चर्चा करते हैं और जब संसार को ब्रह्म में बताते हैं तो अद्वैत की बात करते हैं। इसी 'द्वैताद्वैत' की झलक कबीर की वाणी में पाई जाती है।

मध्यकालीन जैन भक्तकवियों में अनेकान्तात्मक प्रवृत्ति पाई जाती है जिसमें एक ही ब्रह्म के एकानेक, मूर्त्त-मूर्त्त, विरोधाविरोध, भिन्न-भिन्न आदि अनेक रूप द्रष्टव्य हैं। मध्यकाल के जैन भक्त कवि श्री बनारसीदास ने ब्रह्म के 'एकानेक' रूप के सम्बन्ध में लिखा है—

देखु सखी यह ब्रह्म विराजित, याकी दसा सब याही को सोहै।
एक में अनेक अनेक में एक, दुंदु लिये दुविधा मह दो हैं।
आपु संसार लखै अपनौ पद, आपु विसारि कै आपुहि मोहैं।
व्यापक रूप यहै घट अन्तर, ग्यान में कौन अग्यान में को है॥

मुनि आनन्दघन ने कुण्डल और कनक का प्रसिद्ध उदाहरण प्रस्तुत किया है कि कुण्डल आदि पर्याय में अनेक-रूपता रखते हुए भी स्वर्ण के रूप में एक ही है। उसी प्रकार ब्रह्म अपने एकानेक स्वरूप को प्रकट करता है।

हिन्दी निर्गुण भक्ति काव्य के मूल स्रोत में जैन भक्तिधारा भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। मध्यकाल में अनेक जैन भक्त-कवि हुए है जिन्होंने तीर्थंकरों के माध्यम से जैन भक्ति काव्य की प्रचुर मात्रा में सृष्टि की है। तीर्थंकर का जन्म होता है, पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा होती है। वह स्वयं अपने तप और ध्यान के द्वारा धर्म का प्रवर्तन करते हैं, उनकी आत्मा शुद्धतम होती है और वे शरीर से मुक्त हो सिद्ध हो जाते हैं। जिनका न जन्म होता हैं और न मरण, यही है निर्वाण और निःसंग। 'तीर्थंकर को सगुण और सिद्ध को निर्गुण ब्रह्म कहा जा सकता है। एक ही जीव तीर्थंकर और सिद्ध दोनों ही हो सकता है। अतः उसका नितान्त विभाजन सम्भव नहीं।' डा० प्रेमसागर जैन।

जैन भक्तिकाव्य संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में स्तुति-स्तोत्रों के रूप में उपलब्ध होता है। विक्रम की प्रथम शताब्दी से इसका क्रम प्रारम्भ होकर निरन्तर चलता रहा। मुक्तक काव्य रचना का यह प्रवाह आगे चलकर हिन्दी पदकाव्य मंदाकिनी के रूप में निरन्तर प्रवहमान रहा। वास्तव में हिन्दी जैन पद-साहित्य अपने आप में अलग से शोध का विषय है। हिन्दी जैन-भक्ति-साहित्य प्रबन्ध-काव्य के रूप में भी उपलब्ध होता है। रामकाव्य की तो इसमें एक लम्बी परम्परा उपलब्ध होती है। इनमें कहीं-कहीं कृष्ण की कथाएँ भी निबद्ध हैं। विक्रम की पहली शताब्दी में प्राकृत के प्रसिद्ध कवि विमलसूरि का 'पउमचरियं' एक प्रसिद्ध रचना है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता है रामायण के पात्रों का मानवीकरण।

मध्यकाल में भक्तकवि रविषेण के 'पद्मपुराण' के अनेक अनुवाद हिन्दी में रचे गये। इसके अतिरिक्त रामचन्द्र का 'सीताचरित' भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से एक उत्कृष्ट कृति है। १७वीं शती में पं० भगवतीदास ने 'बृहत्सीतासुतु' की रचना की। उसके अतिरिक्त ब्रह्मजयसागर का 'सीताहरण' एक महत्त्वपूर्ण रचना है जो कि एक खण्डकाव्य के रूप में लिखी गई है। भट्टारक महीचन्द का लवकुशछप्पय' रामकथा के आधार पर लिखा गया है। इसी १७वीं शती की एक अन्य सुन्दर कृति है ब्रह्मराममल्ल का 'हनुमच्चरित'। जैन परम्परा के २२वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के साथ कृष्ण और वसुदेव का नाम भी जुड़ा हुआ है। कवि भाऊ का 'नेमीश्वररास' नामक एक ग्रन्थ और उपलब्ध हुआ है, इसमें १५५ पद हैं।

जैन भक्ति साहित्य के निर्माण में भट्टारकों, सूरियों और सन्तों का विशेष योगदान रहा है। वास्तव में जैन भक्तिकाव्य की रचना करने वाले एक ही नाम के अनेक कवि हुए हैं। ज्ञानभूषण नाम के चार भट्टारक हुए हैं, इनमें से 'आदिश्वरफागु' ग्रन्थ के वास्तविक रचयिता की खोज करना अत्यन्त कठिन है। इसी प्रकार चार रूपचन्द और चार भगवतीदास मिलते हैं। आनन्दघनों की भी बहुतायत है। कवि रत्नभूषण ने हिन्दी में 'ज्येष्ठ जिनवरपूजा,' 'विपुलपुण्ण', 'रत्नभूषणस्तुति' तथा 'तीर्थनयमाला' ग्रन्थों की रचना की है। ब्रह्म जयसागर जैन भक्ति साहित्य के सामर्थ्यवान कवि माने जाते हैं, इन्होंने 'सीताहरण', 'अनिरुद्धहरण' और 'सागरचरित' ये तीन प्रबन्धकाव्य लिखे हैं। इन ग्रन्थों का कथानक व प्रबन्धनिर्वाह अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अध्यात्म-सवैया' जैन भक्तकवि पाण्डे रूपचन्द की कृति बतलाई जाती है। डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल का यह मत है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्त में 'इतिश्री अध्यात्म रूपचन्द कृत कवित्त समाप्त' लिखा है किन्तु रूपचन्द नाम के चार कवि हुए हैं इनमें से दो समकालीन थे जो कि उच्चकोटि के विद्वान् थे।

जैन भक्ति में 'निष्कल' और 'सकल' शब्दों का विशेष महत्त्व है। आचार्य योगीन्दु ने अपने ग्रन्थ 'परमात्म-प्रकाश' में 'सिद्ध' को निष्कल कहा है। ब्रह्मदेव ने लिखा है—'पञ्चविधशरीररहितः निष्कलः'। अर्हन्त 'सकल' ब्रह्म कहलाते हैं। अर्हन्त उसे कहते हैं जो चार घातिया कर्मों का नाश करके परमात्मपद को प्राप्त होता है। अर्हन्त का का परम औदारिक शरीर होता है। अतः ये सशरीर कहलाते हैं। 'निष्कल' और 'सकल' में अशरीर और सशरीर का ही भेद है अन्यथा दोनों ही आत्मा परमात्मतत्त्व की दृष्टि से समान हैं। प्रत्येक 'निष्कल' पहले 'सकल' बनता है, क्योंकि बिना शरीर धारण किये और बिना केवलज्ञान प्राप्त किये कोई भी जीव सकल निष्कल नहीं बन सकता। जैन भक्तकवियों ने निष्कल और अर्हन्त अथवा सकल दोनों के ही गुणों का गान किया है। भट्टारक शुभचन्द्र ने 'तत्त्व सारदूत' ग्रन्थ में और मुनि चरित्रसेन ने अपनी 'सम्माधि' कृति में निष्कल और सकल के अनेक गीत गाये हैं।

जैन भक्ति-साहित्य में दाम्पत्य रति प्रमुख है। जैन कवियों ने चेतन को पति और सुमति को पत्नी बताया है। पति-पत्नी के प्रेम में जो शालीनता होती है जैन भक्तकवियों ने उसका सुन्दर निर्वाह किया है। कवि बनारसीदास की "अध्यात्मपदपंक्ति", भैया भगवतीदास की 'अतअष्टोत्तरी', मुनि विनयचन्द की 'चूनरी', द्यानतराय, भूधरदास तथा जगराम आदि के पदों में दाम्पत्य रति के अनेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं। इस दाम्पत्यरति के चित्रण में जैन भक्तकवियों ने पूर्ण मर्यादा का पालन किया है। "आध्यात्मिक विवाह" एक रूपक काव्य है। मेरुनन्दन उपाध्याय का 'जिनोदयसूरी विवाहउल', उपाध्याय जयसागर का 'नेमिनाथ विवाहलो', कुमुदचन्द का 'ऋषभ विवाहलो' तथा अजयराज पाटणी का 'शिवरमणी का विवाह' इस प्रकार के ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। "आध्यात्मिक फागुओं' की रचनाएँ भी जैन भक्त कवियों ने की है जिसमें जैन भक्त चेतन और सुमति आदि अनेक पत्नियों के साथ होली खेलता रहा है। चेतन की पत्नियाँ 'आध्यात्मिक चूनड़ी' पहनती है। कबीर की 'बहुरिया' ने भी चूनड़ी पहनी है। नेमिनाथ और राजीमती से सम्बन्धित मुक्तक और खण्डकाव्यों में जिस प्रेम की अभिव्यंजना हुई है, वह भी लौकिक नहीं, दिव्य है। वैरागी पति के प्रति पत्नी का प्रेम सच्चा है और वह भी वैराग्य से युक्त है।

मध्यकालीन जैन भक्त कवियों ने अपभ्रंश से प्रभावित होकर रहस्यवाद की तो चर्चा की है, किन्तु वे तन्त्र-वाद से मुक्त हैं। इन कवियों में भावात्मक अनुभूति की प्रधानता है। आचार्य कुन्दकुन्द में भी भावात्मक अनुभूति का आधिक्य है। पाण्डे रूपचन्द ने अपने ग्रन्थ 'अध्यात्म-सवैया' में लिखा है—कि आत्मब्रह्म की अनुभूति से यह चेतन दिव्य प्रकाश से युक्त हो जाता है। उसमें दिव्य ज्ञान प्रकट होता है और वह अपने आप में ही लीन होकर परमानन्द का अनुभव करता है। जैन भक्त कवियों में रहस्यवादी-गीतों की सृष्टि करने वालों में सकलकीर्ति का 'आराधनाप्रतिबोधसार', चरित्रसेन का 'सम्माधि', शुभचन्द्र का 'तत्त्वसारदूत', सुन्दरदास की 'सुन्दर सतसई', हेमराज का 'हितोपदेश बावनी' तथा किशनसिंह का 'चेतनगीत' आदि प्रसिद्ध कृतियाँ हैं।

जैन भक्ति साहित्य में सतगुरु का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अर्हन्त और सिद्ध को ही सतगुरु की संज्ञा दी है जो कि ब्रह्म का पर्याय है। कबीर का गुरु ब्रह्म से अलग है। कबीर ने गुरु को ब्रह्म से बड़ा कहा है। जैन भक्तों के अनुसार गुरु सम्यक्-पथ (मोक्ष-मार्ग) का निर्देशक है। जैन गुरु-भक्ति में अनुराग का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। रल्ह की 'जिनदत्त चौपाई' कुशललाभ का 'श्रीपूज्यवाहणगीतम्', साधुकीर्ति का 'जिनचन्द्र सूरिगीतम' तथा जीवराज का 'सुगुरुशतक' अनुसयात्मक भक्ति की श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। जैन भक्त कवियों ने भगवान से याचनाएँ की हैं, क्योंकि उनका यह दृढ़ विश्वास है कि जिनेन्द्र की प्रेरणा से ही उन्हें सामर्थ्य प्राप्त होती है, जिसे प्रेरणाजन्य कर्त्तव्य की संज्ञा भी दी जाती है। जिनेन्द्र का सौन्दर्य प्रेरणा का अक्षय पुंज है। 'स्वयम्भू स्तोत्र' में आचार्य समन्तभद्र ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखा है—"न पूजार्थस्त्वयि वीतरागेन निन्दया नाथ विवान्तवैरे । तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातिचित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ।" द्यानतराय ने जिनेन्द्र के प्रेरणाजन्य कर्त्तव्य को एक उपालम्भ के द्वारा प्रकट किया है—

तुम प्रभु कहियत दीनदयाल ।
आपन जाय मुकति में बैठे, हम जु रुलत जगजाल ॥
तुमरो नाम जपैं हम नीके, मन बच तीनौं काल ।
तुम तो हम को कछू देत नहिं, हमारो कौन हवाल ॥
बुरे-भले हम भगत तिहारे, जानत हो हम हाल ।
और कछू नहीं यह चाहत है, राग द्वेष कौं टाल ॥
हम सों चूक परी सो बकसो, तुम तो कृपा विशाल ।
द्यानत एक बार प्रभु जग तैं, हमको लेहु निकाल ॥

जैन भक्त कवियों ने दास्यभाव से भी जिनेन्द्र की उपासना की है। जैन भक्त भगवान का अनन्य दास है और उसका आराध्य अत्यन्त उदार है तथा वह अपने दास को भी अपने समान बना लेता है। कवि बनारसीदास ने ज्ञानी के लिए सेवाभाव की भक्ति अनिवार्य बताई है। जैनभक्त 'दीनदयालु' को पुकारता है—

"अहो जगदगुरु एक सुनियो अरज हमारी ।
तुम प्रभु दीन दयालु, मैं दुखिया संसारी ॥"

जैन भक्त कवियों ने हिन्दी के भक्त कवियों की भाँति अपने आराध्य की महत्ता का प्रतिपादन किया है। जब भक्त अपने को लघु तथा अपने आराध्य को अत्यन्त महान् समझता है तभी वह श्रेष्ठ भक्त कहलाता है। हिन्दी के शीर्ष कवि तुलसीदास एवं सूरदास ने अपने आराध्य राम और कृष्ण को ब्रह्मा और महेश से भी बड़ा बतलाया है तो जैन भक्त कवियों ने भी जिनेन्द्र को अन्य देवों से बड़ा माना है। आराध्य की महत्ता के समक्ष भक्त अपने को अत्यन्त तुच्छ एवं अकिंचन समझता है। भक्त अपने को जितना अकिंचन एवं लघु अनुभव करता है वह उतना ही विनम्र होगा और अपने आराध्य के समीप पहुँच जायेगा। तुलसी ने लघुता के भाव को 'विनय पत्रिका' में पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। जैन भक्त कवि का जगजीवन, मनराम, बनारसीदास तथा रूपचन्द आदि ने अपने पदों में अपनी लघुता को प्रमुखता प्रदान की है। लघुता के साथ ही भक्त के हृदय में दीनता का भाव भी जागृत होता है। जैन भक्त कवियों ने दीनता को लेकर 'दीनदयालु' के सम्बन्ध में प्रचुर पदों की रचना की है। इन भक्त कवियों में दौलतराम की 'अध्यात्म बारहखड़ी', भैया भगवतीदास का 'ब्रह्मविलास', भूधरदास का 'भूधर विलास' आदि उल्लेखनीय हैं। जिनेन्द्र 'दीनदयालु' एवं 'अशरणशरण' हैं। जैन भक्त कवियों ने जिनेन्द्र के इस रूप को लेकर प्रचुर मात्रा में आत्मपरक पदों की रचना की है। इस सन्दर्भ में पं० दौलतराम का निम्न पद द्रष्टव्य है—

जाऊं कहां तजि शरण तिहारी ।
चूक अनादितनी या हमरी, माफ करौ करुणा गुनधारे ।
डूबत हौं भवसागर में अब, तुम बिनु को मोहि पार निकारे ॥

जैन भक्त कवियों ने जिनेन्द्र के नाम जाप की महिमा सदैव स्वीकारी है। हिन्दी के सूर, तुलसी आदि भक्त कवियों के समान ही इन जैन भक्त कवियों ने भी जिनेन्द्र का नाम जपने की महिमा गायी है। जिनेन्द्र में असीम गुण हैं और मानव है ससीम। अतः असीम को कहने के लिए ससीम अतिशयोक्ति का सहारा लेता है। जैन कवि द्यानतराय ने लिखा है—

प्रभु मैं किहिं विधि थुति करौं तेरी ।
गणधर कहत पार नहिं पावै, कहा बुधि है मेरी ॥
प्राक् जनम धरि सहजीभ धरि तुम जस होत न पूर ।
एक जीभ कैसे गुण गावै उलू कहै किमि सूर ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी भक्त अपने आराध्य का स्मरण करते हैं। जैन भक्तों एवं आचार्यों ने स्मरण और ध्यान को पर्यायवाची कहा है। 'कल्याणमन्दिर स्तोत्र' में कहा गया है कि जिनेन्द्र के ध्यान से क्षणमात्र में यह जीव परमात्म-दशा को प्राप्त हो जाता है। भक्त के हृदय में अपने आराध्य के दर्शन की उत्कण्ठा सदैव बनी रहती है। जैन भक्त भट्टारक ज्ञानभूषण ने 'आदीश्वर फागु' में बालक आदीश्वर के सौन्दर्य का वर्णन किगा है—"देखने वाला ज्यों-ज्यों देखता जाता है उसके हृदय में वह बालक अधिकाधिक भाता जाता है। तीर्थंकर का जन्म हुआ है और इन्द्र टकटकी लगाकर उसे देखने लगे, किन्तु तृप्त नहीं हुए तो सहस्र नेत्र धारण कर लिये, फिर भी तृप्ति न मिल सकी। महात्मा आनन्दघन ने लिखा है कि मार्ग को निहारते-निहारते आँखें स्थिर हो गयी हैं। जैसे योगी समाधि में हो, वियोग की बात किससे कही जावे, मन को तो भगवान के दर्शन करने से ही शान्ति प्राप्त होती है—

पंथ निहारत लोयणें, द्रग लगीं अडोला।
जोगी सुरत समाधि में, मुनि ध्यान अकोला॥
कौन सुनै किनहुं कहुं, किम मांडूं मैं खोला।
तेरे मुख दीठे हले, मेरे मन का चोला॥

जैन भक्त कवियों ने अपने अन्तर् में 'आत्मराम' के दर्शन की बात बहुत कही है। उनके दर्शन से चरम आनन्द की अनुभूति होती है और यह जीव स्वयं भी 'परमातम' बन जाता है। आनन्दतिलक ने अपने ग्रन्थ–"महा-नन्दिदेउ" में लिखा है—"अप्प बिदुंण जाणति रे। घट महि देव अणतु।" कवि ब्रह्मदीप ने "अध्यात्मबावनी" में लिखा है—"जै नीकै धरि घटि माहि देखैं, तो दरसनु होइ तबहि सबु पेखैं।" कविवर बनारसीदास के कथनानुसार 'घट में रहने वाले उस परमात्मा के रूप को देखकर महा रूपवन्त थकित हो जाते हैं, उनके शरीर की सुगन्ध से अन्य सुगन्धियाँ छिप जातीं है। (ग्रन्थ—बनारसीविलास)

भक्त को जब 'आत्मराम' के दर्शन प्राप्त होते हैं तो उसे केवल हृदय में ही आनन्द की अनुभूति नहीं होती वरन् उसे सारी पृथ्वी आनन्दमग्न दिखाई देती है। कवि बनारसीदास ने प्रिय आतम के दर्शन से सम्पूर्ण प्रकृति को भी प्रफुल्लित दरसाया है। उसी प्रकार कवि जायसी ने 'पदमावत' में सिंहलद्वीप से आये रतनसेन को जब नागमती ने देखा तो उसे सम्पूर्ण विश्व हराभरा दिखाई दिया। जैन भक्त कवियों ने आध्यात्मिक आनन्द पर ही अधिक बल दिया है।

जैन भक्ति में समर्पण की भावना का प्राधान्य है। आचार्य समन्तभद्र ने 'स्तुतिविद्या' में लिखा है—"प्रज्ञा वही है, जो तुम्हारा स्मरण करे, शिर वही है, जो तुम्हारे पैरों पर विनत हो, जन्म वही है, जिसमें आपके पादपद्मों का आश्रय लिया गय हो; आपके मत में अनुरक्त रहना ही मांगल्य है; वाणी वही है जो आपकी स्तुति करे और विद्वान् वही है जो आपके समक्ष रहे"। यशोविजय ने 'पार्श्वनाथ स्तोत्र' में, श्री धर्मसूरि ने 'श्रीपार्श्वजिनस्तवनम्' में, आनन्दमाणिक्यगणि ने 'पार्श्वनाथस्तोत्र' में भी इसी प्रकार के विचार प्रगट किये हैं। हिन्दी भक्त कवियों ने भी इसी सरस परम्परा का निर्वाह किया है।

कबीर आदि हिन्दी के निर्गुण भक्ति कवियों की साखियों और पदों में 'चेतावनी को अंग' का अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण स्थान है। इस अंग में सन्तों ने अपने मन को संसार के माया-मोह से सावधान किया है। जैन तथा बौद्ध भक्ति साहित्य में यह चेतावनी वाली बात अधिक मिलती है, क्योंकि ये दोनों धर्म विरक्तिप्रधान हैं। जैन भक्ति साहित्य में अनेक कवियों ने इसी प्रकार के अत्यन्त सरस पदों की रचना की है। उदाहरणार्थ—जैन भक्ति कवि भूधरदास ने अनेक प्रसाद गुण-युक्त श्रेष्ठ पदों की रचना की है, उनमें से निम्न पद द्रष्टव्य है—

भगवंत भजन क्यों भूला रे।
यह संसार रैन का सपना, तन धन वारि बबूला रे॥
इस जीवन का कौन भरोसा, पावक में तूल पूला रे।
काल कुदाल लिये सिर ठाडा, क्या समझे मन फूला रे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोह पिशाच छल्यौ मति मारै, निज कर बंध वसूला रे।
भज श्री राजमतीवर भूधर, दो दुरमति सिर धूला रे।। —(भूधर विलास)

जैन भक्त कवियों ने भक्ति सम्बन्धी अनेक श्रेष्ठ काव्य ग्रन्थों की रचना की है जो कि शतक, बावनी, बत्तीसी तथा छत्तीसी आदि के रूप में उपलब्ध होते हैं। बारहखड़ी के अक्षरों को लेकर सीमित पद्यों में काव्य-रचना करना जैन भक्त कवियों की अपनी विशेषता है। पं० दौलतराम का "अध्यात्म बारहखड़ी" बृहद् काव्यग्रंथ उल्लेखनीय हैं। बारहखड़ी के अक्षरों पर लिखा गया यह बृहद् मुक्तक काव्य अभूतपूर्व एवं अनन्य है। जैन भक्त कवियों द्वारा लिखी गई अनेक बावनियाँ उपलब्ध होती हैं, जिनमें भक्तिपरक अनुपम भाव सामग्री भरी पड़ी है। पाण्डे हेमराज की "हितोपदेश-बावनी", उदामराजजती की 'गुणबावनी', पं० मनमोहनदास की 'चिन्तामणि-बावनी', जिनरंभसूरि की 'प्रबोधबावनी' आदि जैन-भक्ति-साहित्य की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। शतक ग्रन्थों में पाण्डे रूपचन्द का परमार्थीदोहा-शतक', भवानीदास का 'फुटकरशतक' तथा भैया का 'परमात्मशतक' आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। जैन भक्त कवियों ने अनेक बत्तीसी, छत्तीसी और पच्चीसियाँ भी रची हैं। बनारसीदास की 'ध्यानबत्तीसी' और 'अध्यात्म बत्तीसी', मनराम की 'अक्षरबत्तीसी', लक्ष्मीवल्लभ की 'चेतनबत्तीसी', और 'उपदेशबत्तीसी' कुशललाभ की 'स्थूलभक्तछत्तीसी' सहजकीर्ति की 'प्रतिछत्तीसी' और उदयराजजती की 'भजनछत्तीसी', द्यानतराय की 'धर्मपच्चीसी', विनोदीलाल की 'राजुलपच्चीसी' और 'फूलमाल पच्चीसी' तथा बनारसीदास की 'शिवपच्चीसी' आदि उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं।

जैन भक्त कवियों ने भगवद्विषयक अनुराग को लेकर अनेक प्रेम रूपकों को भी रचना की है। इन ग्रन्थों में सुमति रूपी पत्नी का चेतन रूपी पति के लिये व्याकुलता का भाव अभिव्यक्त किया गया है। इस प्रकार के ग्रन्थों में पाण्डे जिनदास का 'मालीरासो', उदयराजजती का 'वेदविरहिणीप्रबन्ध', पाण्डे रूपचन्द का 'खटोलनागीत', हर्षकीर्ति का 'कर्महिण्डोलना' और भैया भगवतीदास का 'सुआबत्तीसी' और 'चेतनकर्मचरित' आदि प्रसिद्ध रूपक कृतियाँ हैं। वास्तव में ये सरस काव्य ग्रन्थ हिन्दी साहित्य को जैन भक्त-कवियों की अनूठी देन हैं।

जैन भक्त कवियों ने अनेक प्रबन्ध काव्यों (महाकाव्यों) की भी सृष्टि की है। इन ग्रन्थों में जिनेन्द्र अथवा उनके अनन्य भक्तों को प्रमुखता प्रदान की गई है। इन ग्रन्थों की रचना अपभ्रंश के महाकाव्यों की पौराणिक एवं रोमांचक दोनों प्रकार की शैलियों का सम्मिश्रण करके की गई है। सधारू का 'प्रद्युम्नचरित', कवि परिमल्ल का 'श्रीपालचरित्र', माल कवि का 'भोजप्रबन्ध', लालचन्द लब्धोदय का 'पद्मिनीचरित'; रामचन्द्र का 'सीताचरित' तथा भूधरदास का 'पार्श्वपुराण' आदि महत्त्वपूर्ण महाकाव्य हैं। इन महाकाव्यों में बीच-बीच में मुक्तक स्तुतियों का भी समावेश किया गया है। इन प्रबन्धकाव्यों की एक और उल्लेखनीय विशेषता यह है कि ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय में नायक की केवलज्ञान प्राप्ति का भी सरस एवं भावपूर्ण वर्णन किया गया है तथा नायक की आत्मा का परमात्मा से तादात्म्य होना भी दरशाया गया है। साथ ही ये महाकाव्य सगुण (सकल) और निर्गुण (निष्कल) की भक्ति का निरूपण करने के लिये रचे गये हैं।

जैन भक्त कवियों द्वारा अनेक खण्डकाव्यों की भी रचना की गई है। उनमें से अधिकांश नेमिनाथ और राजीमती की कथा को लेकर गचे गये हैं। नेमिनाथ विवाह-मण्डप से बिना विवाह किये ही वैराग्य लेकर तप करने चले गये थे, किन्तु राजीमती ने उन्हें अपना पति माना और किसी अन्य के साथ विवाह नहीं किया और संयम लेकर आत्मसाधना में अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया। नेमिनाथ पर लिखे गये खण्डकाव्यों में राजशेखरसूरि का 'नेमिनाथफागु', सोमनाथसूरि का 'नेमिनाथफागु', कवि ठकुरसी की 'नेमिसूर की वेली' तथा अजयराज पाटणी का 'नेमिनाथचरित' महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

जैन भक्त कवियों ने अपने लगभग सभी प्रबन्ध काव्यों का प्रारम्भ सरस्वतीवन्दना से किया है। मुक्तककाव्यों में भी सरस्वती की स्तुतियाँ उपलब्ध होती हैं। जैन भक्त कवियों ने विलास का सम्बन्ध भक्ति से नहीं जोड़ा है। 'गीतिगोविन्द' की राधा और 'रट्ठणेमिचरिउ' की राजुल में बहुत अन्तर है। नेमिनाथ और राजुल से सम्बन्धित सभी जैन काव्य विरह-काव्य हैं, किन्तु राजुल के विरह में कहीं भी वासना अथवा विलासिता की गन्ध नहीं आने पाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जैन भक्त कवियों ने दाम्पत्य रति का सम्बन्ध भौतिक क्षेत्र से न जोड़कर आध्यात्मिकता से जोड़ा है। साथ ही वीतरागी भक्ति से सम्पूर्ण जैन भक्ति साहित्य परिपूर्ण है।

स्वयंभू का 'पउमचरिउ' वि० सं० नवमी शती में रचा गया अपभ्रंश भाषा का ग्रन्थ है। इसी प्रकार कवि पुष्पदन्त का 'णायकुमारचरिउ' वि० सं० १०२९ में रची गयी अपभ्रंश भाषा की कृति है, जिसे पुष्पदन्त ने देशभाषा की संज्ञा दी है। श्रीचन्द ने जैन भक्ति सम्बन्धी कथाओं को लेकर देशभाषा में 'कथाकोष' नामक ग्रन्थ की रचना की। तेरहवीं शती में विनयचन्द सूरि ने 'नेमिनाथ चउपई' ग्रन्थ का प्रणयन किया। शालिभद्रसूरि का बाहुबलिरास' (सन् ११८४) एक उच्च कोटि का ग्रन्थ है। महेन्द्रसूरि के शिष्य धर्मसूरि ने वि० सं० १२६६ में 'जम्बूस्वामीचरित', 'स्थूलचन्द्ररास' तथा 'सुभद्रासती चतुष्पदिका' ग्रन्थों की रचना की। इनके अतिरिक्त ईश्वर सूरि, (सं० १५६१), गुणसागर (सं० १६२६), त्रिभुवनचन्द्र (सं० १६५२), सुन्दरदास (सं० १६७५), कनक-कीर्ति, जिनहर्ष (सं० १७१३), बिहारीदास (सं० १७५८) तथा पं० दौलतराम (सं० १७७७) आदि जैन भक्त साहित्यकारों के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

जैन भक्ति साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, जो कि अनेक जैन भक्त कवियों द्वारा समय-समय पर प्राकृत, अपभ्रंश, देशभाषा तथा हिन्दीभाषा में रचा गया है। इस लेख में समूचे जैन भक्ति साहित्य का विस्तृत विवेचन तो सम्भव नहीं था, अतः उसकी मुख्य-मुख्य प्रवृत्तियाँ एवं तत्सम्बन्धी विशेषकर हिन्दी की प्रमुख कृतियों तथा कृतिकारों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org